ख्रिस्तीय वत्सराभिनंदन

(म.म. राष्ट्रपति-सम्मानित) प्रो. वैद्य बनवारी लाल गौड़
पूर्व कुलपति,
डॉ. एस. आर. राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय जोधपुर

डॉ. विश्वावसु गौड
असिस्टेंट प्रोफेसर,
महात्मा ज्योतिबा फुले आयुर्वेद महाविद्यालय,
हाड़ोता, चौमू, जयपुर (राजस्थान)

भारतवर्ष में आस्तिक दर्शन का प्रचलन अनेक शताब्दियों से रहा है| आस्तिक दर्शन में वेदों के अस्तित्व की स्वीकृति है, उसके साथ-साथ धार्मिक-परम्पराओं की सम्पृक्तता भी इसके वैशिष्ट्य को प्रदर्शित करती है। यहाँ पापाचरण को निन्द्य और धर्माचरण को श्रेष्ठ माना जाता रहा है। धर्माचरण और परोपकार की भावना यहाँ की संस्कृति में पूर्णरूपेण संसक्त और संपृक्त होने के कारण श्रेष्ठ भावों का संचरण परम्परागत रूप से यहाँ के निवासियों में स्वाभाविक रूप से सङ्क्रान्त होता आया है, जिसके कारण सहिष्णुता (तितिक्षा एवं क्षमाशीलता) के भावों का सञ्चरण निरन्तर होता रहा है। परिणामस्वरूप अतीत में इस देश ने अनेक सङ्कट भी झेले, लेकिन इतना होते हुए भी यहाँ के निवासी एवं शासक अपना स्वभाव नहीं छोड़ सके, इसके प्रभावस्वरूप यहाँ आस्तिक और नास्तिक दर्शनों के रूप में अनेक दार्शनिक विचार प्रचलित हुए। इसी तरह अनेक प्रकार के इतर धर्म भी यहाँ सङ्क्रान्त होते रहे, जिन्हें भारतवासी अपने धर्म के साथ- साथ सहिष्णुभाव से स्वीकार करते आ रहे हैं।

धार्मिक-परम्पराओं, प्रक्रियाओं और मान्यताओं के साथ-साथ उन धर्मों के आचार और व्यवहार भी यहाँ के निवासियों के द्वारा आत्मसात् होते रहे, इस प्रक्रिया में कुछ विशिष्ट उत्सव, अवसर, दिवस, त्यौहार आदि भी यहाँ की परम्पराओं में मिश्रीभूत होकर एकीकृत रूप में प्रचलित होते रहे। उत्सव की इस परम्परा में कालगणना की प्रक्रिया में प्रारम्भ होने वाले किसी भी वर्ष का प्रथम दिवस भी उत्सव स्वरूप में आपतित हुआ है, इसके लिए यह भी एक विचारणीय विषय है, कि जब कभी भी काल की गणना प्रारम्भ हुई, तो उसके एक निश्चित कालखण्ड को वर्ष के रूप में घोषित किया गया और उस वर्ष का प्रथम दिन उत्सव के रूप में प्रचलित होने लगा।

कालगणना का यह स्वरूप भी भारतवर्ष में एक प्रकार का नहीं रह पाया, जब किसी ने भी किसी भी आधार

पर काल की गणना प्रारम्भ की, तो वह यहाँ किसी एक समुदाय के द्वारा प्रमुख रूप से स्वीकार कर लिए जाने पर दूसरे लोगों के द्वारा भी गौण रूप में स्वीकार किया जा कर सहिष्णुता के कारण स्वीकार किया जाता रहा। यही कारण है कि भारतवर्ष में कालगणना के मापदण्ड के रूप में अनेक संवत् समय-समय पर प्रचलित हुए। वे सभी प्रकार के संवत् भारतवासियों के द्वारा किसी न किसी रूप में आत्मसात् कर लिए गए, यह स्वरूप कहीं पर प्रमुख रूप से, तो कहीं पर गौण रूप से प्रचलित होता रहा।

इतिहास-विशेषज्ञ कहते हैं कि युधिष्ठिर, विक्रम, शालिवाहन, विजयाभिनंदन, नागार्जुन एवं कल्कि ने भी संवत् पृथक् पृथक् रूप से प्रारम्भ किए। भारतवर्ष में अनेक संवत् काल-गणना के मापदण्ड के रूप में प्रचलित रहे हैं। जिनमें चार संवत् प्रमुख माने जाते हैं-

वीरनिर्वाण संवत्, विक्रम संवत्, लोधी संवत् और शक संवत् तथा अब पाँचवाँ संवत् ईसवी संवत् के रूप में पूरे भारतवर्ष में तेजी से अपने पैर पसार रहा है।

१. वीरनिर्वाण संवत्-

यह जैनधर्म के प्रणेता महावीर स्वामी के निर्वाण के वर्ष के रूप में मनाया जाने लगा, जोकि ईसा पूर्व ५२७ वर्ष माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि वीर निर्वाण संवत् ही भारतवर्ष में सबसे पुराना संवत् है जो कि कालगणना के खण्ड के रूप में स्वीकृत किया गया है। कार्तिक कृष्णा अमावास्या जो कि वर्तमान में दीपावली के रूप में मनाई जाती है, उस दिन ही भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ था, अतः उसके एक दिन बाद कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा के दिन से इस वीर निर्वाण संवत् का प्रारम्भ हुआ, यह भारतवर्ष में प्रचलित संवत् के सभी प्रकारों में प्राचीनतम है।

२. विक्रम संवत्-

ऐसा कहा जाता है कि भारतवर्ष में शक-समुदाय जो कि एक विदेशी जाति मानी जाती थी, उन्होंने भारत पर आक्रमण किया और यहाँ शासन करने लगे। उनके अत्याचारों से त्रस्त यहाँ की जनता ने मालव गण के सामूहिक प्रयत्नों से उन्हें पराजित किया। ऐसा माना जाता है कि गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रम के नेतृत्व में उन शकों को पराजित किया गया और उसी के कारण इस विशिष्ट संवत् को प्रारम्भ किया गया, जिसे प्रारम्भ में कृतसंवत्, मालव संवत् भी कहा जाता था, जो कि अंत में विक्रम संवत् के रूप में अवशिष्ट रह गया। वर्तमान में विक्रम संवत् के नाम से ही

इसे जाना जाता है।

३. शक संवत्-

वर्तमान में शक संवत् को ही भारत के राष्ट्रीय कैलेण्डर के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। इसका प्रारम्भ ७८ ईस्वी से शक संवत् के रूप में विख्यात होते हुए भी इतिहासविशेषज्ञों का एकमत से यह मानना है, कि यह शकों के द्वारा प्रारम्भ नहीं किया गया। कुछ इतिहास-विशेषज्ञों का मानना है, कि कुषाण राजा कनिष्क के द्वारा यह शक संवत् प्रारम्भ किया गया।

उत्पल (लगभग ९६६ ईसवी) ने बृहत्संहिता की व्याख्या में कहा है, कि जब विक्रमादित्य द्वारा शक राजा मारा गया तो यह संवत् प्रारम्भ हुआ। इसके वर्ष चान्द्र गणना के लिए चैत्र से एवं सौर गणना के लिए मेष से आरम्भ होते थे। चालुक्य वल्लभेश्वर के द्वारा स्थापित किए गए एक शिलालेख के द्वारा यह स्पष्ट होता है। उसमें शक संवत् का उल्लेख है जिसमें ४६५ शक संवत् लिखा गया है, अर्थात् ५४३ ईसवी में यह शिलालेख लिखा गया, लेकिन कुछ लोगों का मानना है शक संवत् की स्थापना कनिष्क के द्वारा की गयी।

४. लोधी संवत्-

ऐसा माना जाता है के ईसा से १६० वर्ष पूर्व राजा शालिवाहन ने एक शिलालेख उत्कीर्ण करवाया था, उसमें ब्रह्म स्वरूप लोधी को महाराजा के रूप में प्रतिष्ठित माना है। लोधी संवत् की प्रारम्भिक तिथि के विषय में विद्वानों के पृथक् पृथक् विचार हैं, फिर भी यह माना जाता है कि लोधी संवत् का प्रचलन शक संवत् के पहले हो चुका था, लेकिन इसकी निश्चित तिथि के विषय में अब भी विद्वानों में मतभेद है।

५. ईसवीय संवत्-

१ जनवरी को नव वर्ष मनाने का प्रचलन १५८२ ईस्वी के ग्रेगोरियन कैलेण्डर के आरम्भ के बाद से माना जाता है। इसे पोप ग्रेगरी अष्टम ने १५८२ ईस्वी में तैयार किया था। बाद में इस में लीप ईयर का भी प्रावधान किया गया था। प्रारम्भ में प्रायः सभी संवत्सर मार्च या अप्रैल से प्रारम्भ होते थे। ग्रेगोरियन कैलेण्डर से पहले जूलियस सीजर का कैलेण्डर ईसाई धर्म मानने वाले सभी देशों ने स्वीकार किया था, उन्होंने इन वर्षों की गणना ईसा के जन्म से की थी, अतः जन्म के पूर्व के वर्ष बी.सी. (B. C., Before Crist) क्राइस्ट कहलाए और बाद के वर्ष ए.डी.

(A.D., After Death) कहलाने लगे|

वर्तमान में विश्व के अधिकांश देश ग्रेगोरियन कैलेण्डर को ही मानने लग गए हैं। ग्रेगोरियन कैलेण्डर का अनेक बार संशोधन किया गया है। इस कैलेण्डर को सबसे पहले पुर्तगाल, जर्मनी, स्पेन तथा इटली ने अपनाया। ऐसा मानते हैं कि सन् १७०० ईस्वी में स्वीडन और डेनमार्क में यह कैलेण्डर लागू किया गया तथा सन् १७५२ में इंग्लैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपनाया। इसे १७७३ में जापान ने और १९११ में चीन ने भी अपनाया।

जिस प्रकार भारतीय संवत्सर में पृथक्-पृथक् महीनों का पृथक्-पृथक् देवताओं या नक्षत्रों के साथ सम्पर्क निश्चित किया गया है, उसी प्रकार इन ईसवीय सन् के महीनों के नाम भी किसी न किसी देवता के साथ संपृक्त किए गए। यह एक साथ नहीं किया गया, अपितु पृथक्-पृथक् घटनाओं के बाद विभिन्न देशों के द्वारा यह प्रक्रिया अपनायी गयी।

भारतीय संवत्सर ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमा एवं वायु की गति इत्यादि के आधार पर है। यह पूर्णरूपेण वैज्ञानिक मापदण्डों पर आधारित है, यह विभाजन तर्कसम्मत है, जबकि अन्य देशों के द्वारा स्वीकृत किए गए काल के खण्ड को परिमापित किए जाने वाले संवत्सर में इस तरह का कोई आधार सम्भवतः नहीं है। आचार्य चरक कहते हैं -

कालः पुनः संवत्सरश्चातुरावस्था च।

तत्र संवत्सरो द्विधा त्रिधा षोढा द्वादशधा भूयश्चाप्यतः प्रविभज्यते तत्तत्कार्यमभिसमीक्ष्य।

अत्र खलु तावत् षोढा प्रविभज्य कार्यमुपदेक्ष्यते- हेमन्तो ग्रीष्मो वर्षाश्चेति शीतोष्णवर्षलक्षणास्त्रयः ऋतवो भवन्ति, तेषामन्तरेष्वितरे साधारणलक्षणास्त्रयः ऋतवः- प्रावृट्शरद्वसन्ता इति|

प्रावृडिति प्रथमः प्रवृष्टः कालः, तस्यानुबन्धो हि वर्षाः।

एवमेते संशोधनमधिकृत्य षट् विभज्यन्ते ऋतवः।। (चरक. विमान. 8/125)

इससे पहले आचार्य चरक ने षडङ्ग स्वरूप में ऋतुओं की गणना करते हुए संवत्सर का अयनात्मक विवेचन किया है, यथा-

इह खलु संवत्सरं षडङ्गमृतुविभागेन विद्यात्।

तत्रादित्यस्योदगयनमादानं च त्रीनृतूञ्छिशिरादीन् ग्रीष्मान्तान् व्यवस्येत्, वर्षादीन् पुनर्हेमन्तान्तान् दक्षिणायनं विसर्गं च।। (चरक. सूत्र. 6/4)

इतिहासविशेषज्ञ ग्रेगोरियन कैलेण्डर का इतिहास बताते हुए कहते हैं कि-

चीनी सभ्यता में कैलेण्डर का अर्थ था चिल्लाना। प्राचीन काल में प्रशासन की ओर से एक व्यक्तिविशेष को नियुक्त किया जाता था जो कि चिल्ला-चिल्ला कर तिथि, त्यौंहार, अन्य विशिष्ट दिन, व्रत और सर्दी-गर्मी तथा वर्षा की भी अनुमानित घोषणा किया करता था | अतः इस तरह से चिल्लाने वाले को कैलेण्डर कहा जाने लगा | बाद में समय को एक नियत प्रक्रिया के माध्यम से तिथि, वार, मास आदि के रूप में बताने वाले व्यवस्थापत्रक को कैलेण्डर ही कहा जाने लगा, जो इसी के लिए योगरूढ़ हो गया तथा इसी नाम से प्रचलित हो गया | ऐसा माना जाता है, कि प्रारम्भ में इस कालगणना का आधार भी चन्द्रमा ही हुआ करता था।

वर्तमान में विश्व के अधिकांश देशों में काल की गणना जिस कैलेण्डर के आधार पर की जाती है, उसे ग्रेगोरियन कैलेण्डर कहते हैं। ऐसा कहा जाता है कि ३७६१ ईसा पूर्व यहूदी कैलेण्डर का प्रारम्भ हुआ| यदि लैटिन भाषा में कैलेण्डर शब्द की व्युत्पत्ति को देखा जाये, तो इसका मूल शब्द है – Calendrium, जिसका अर्थ होता है- लिखा हुआ होना | ग्रेगोरियन कैलेण्डर का प्रारम्भ सन् १५८२ में हुआ तथा यह भी सूर्य- चन्द्र पर आधारित है | लेकिन सूर्य-चन्द्रमा का यह आधार विशृंखलित है।

जिस प्रकार भारतीय ज्योतिष में सूर्य चन्द्रमा की गति को मान कर नियत स्वरूप में तिथि आदि को निश्चित किया जाता है वैसा इस ग्रेगोरियन कैलेण्डर में नहीं है, क्योंकि अनेक बार अनेक कारणों से अनेक शासकों ने अपनी-अपनी सुविधा या अहंकार के आधार पर इसमें अनेक परिवर्तन किए हैं। ऐसा माना जाता है कि प्रारम्भ में इस कैलेण्डर में १० माह का ही वर्ष माना जाता था। इसके महीनों के नाम में भी विभिन्न ऐतिहासिक कथन जुड़े हुए हैं, जो कि पृथक् से विवेचन के योग्य हैं। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है, कि भारतीय कालगणना अत्यन्त ही श्रेष्ठ है और उसका स्थान विश्व का कोई भी कालगणनात्मक स्वरूप नहीं ले सकता।

ग्रेगोरियन कैलेण्डर के प्रचलन से पहले जूलियस द्वारा प्रसारित कैलेण्डर प्रचलन में था। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में कैलेण्डर के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि- Calendar = a page or series of pages in the days weeks and months of a particular year especially one that you hang on a wall or a system by which time is divided in to fixed periods, showing the beginning and end of a year. (Oxford dictionary)

ग्रेगोरियन कैलेण्डर के विषय में कहा गया है -

Gregorian calendar = the system used since 1582 in western countries of arranging the months in the year and the days in the months and of counting the years from the birth of Christ. (Oxford dictionary)

इसी तरह जूलियन कैलेण्डर को स्पष्ट करते हुए कहा गया है -

Julian calendar = the system of arranging days and months in the year introduced by Julius Caesar and used in western countries till the Gregorian Calendar replaced it (oxford dictionary)

भारतवर्ष में गणना के स्वरूप में कुछ इतिहासकार प्रागैतिहासिक काल एवं वैदिक काल की साथ साथ गणना करते हुए इसको प्रारम्भिक काल मानते हैं, जो बाद में रामायणकाल-महाभारत काल तथा बौद्ध-काल आदि के रूप में भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रचलित रहा है।

भारतवर्ष में समयनिर्धारण की प्रक्रिया में मौर्यकाल को महत्त्वपूर्ण स्तम्भ के रूप में माना जाता है , क्योंकि मौर्यकाल की स्थापना की निश्चित तिथि ज्ञात है | मौर्यकाल ६५० ई.पूर्व से ३२६ ई. पूर्व तक रहा | चन्द्रगुप्त मौर्य ने सिकन्दर के द्वारा विजित क्षेत्रों को मुक्त करवाया था, जिसकी निश्चित ज्ञात तिथि ३२२ ई.पूर्व की है | चन्द्रगुप्त मौर्य का उत्तराधिकारी बिन्दुसार था, जिसके पुत्र सम्राट् अशोक महान् के शासन का प्रारम्भ २६९ ईसवी पूर्व से माना जाता है |

चीन के केन्टन नगर में काल की गणना करने की एक विशिष्ट प्रथा प्रचलित थी, जिसे बिंदुप्रथा कहा जाता था | इसमें १ वर्ष पूरा होने पर एक बिंदु को किसी विशिष्ट स्थान पर उत्कीर्ण कर दिया जाता था। इस बिंदुप्रथा के

आधार पर महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण की तिथि ४८६ ई.पूर्व सुनिश्चित है | इसी के आधार पर अशोक के शासन के प्रारम्भ की तिथि की गणना भी की गयी है।

विक्रम संवत् की काल-गणना में प्रहर, दिन-रात, (वार, सप्ताह), पक्ष, मास, अयन (६ माह का एक अयन), संवत्सर (१२ मास का एक संवत्सर), दिव्य वर्ष (या देववर्ष), मन्वंतर, युग (सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर और कलयुग।

३६० मानव-वर्ष का एक दिव्य वर्ष माना जाता है जिसे देवताओं का १ वर्ष गणनात्मक रूप से निश्चित किया जाता है। १२००० दिव्य वर्ष मिलकर एक महायुग को निश्चित करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि ४८०० दिव्य वर्ष का सतयुग, ३६०० दिव्य वर्ष का त्रेतायुग एवं २४०० दिव्य वर्ष का द्वापरयुग तथा १२०० दिव्य वर्ष का कलियुग माना जाता है। १२००० दिव्य वर्ष का एक महायुग माना जाता है। १००० महायुग का एक कल्प होता है जिसे ब्रह्मा का केवल एक दिवस कहा जाता है। भारतीय कालगणना में कल्प और ब्रह्म वर्ष इत्यादि की भी गणना की जाती है। यह गणना आगे तक भी की गई है, जिसे उन विशिष्ट स्थलों पर ही देखना उपयुक्त है।

जिस प्रकार से भारतीय काल-गणना में चैत्र मास को प्राथमिकता दी जाती रही है, उसी प्रकार से अन्य देशों में भी काल की गणना में मार्च मास को ही प्रथम माह माना जाता था, जो कि लगभग चैत्र मास के आसपास ही आता है, बाद में इसे परिवर्तित कर जनवरी में प्रथम मास माना जाने लगा, जिसका एक पृथक् इतिहास है।

आयुर्वेद में काल को भगवान् कहा गया है | मनुष्य की उत्पत्ति एवं विनाश में काल का कारणत्व है एवं सभी प्रकार के द्रव्यों की उत्पत्ति एवं उनमें रसों की सम्यक् स्थिति एवं विकृति का भी कारण काल ही है | सुश्रुतसंहिता में काल के स्वरूप को अभिव्यक्त करते हुए कहा गया है -

कालो हि नाम (भगवान्) स्वयम्भूरनादिमध्यनिधनः।

अत्र रसव्यापत्सम्पत्ती जीवितमरणे च मनुष्याणामायत्ते | स सूक्ष्मामपि कलां न लीयत इति कालः, सङ्कलयति कालयति वा भूतानीति कालः ।। (सुश्रुत. सूत्र. 6/3)

अर्थात् वह भगवान् स्वयंभू जो किसी से उत्पन्न नहीं हुआ है तथा आदि, मध्य और अन्त से रहित है, मधुर आदि रसों की व्यापत्ति एवं सम्पत्ति तथा जीवन और मरण उस काल के ही अधीन हैं | वह काल अपनी सूक्ष्म कला तक भी नहीं ठहरता है, अतः उसे काल कहा गया है अथवा प्राणियों के सुख-दुःख को करता है अथवा प्राणियों का संहार करता है, अतः उसे काल कहते हैं।

इस सम्बन्ध में आचार्य चरक कहते हैं -

शीतोष्णवर्षलक्षणाः पुनर्हेमन्तग्रीष्मवर्षाः संवत्सरः, स कालः।

तत्रातिमात्रस्वलक्षणः कालः कालातियोगः, हीनस्वलक्षणः (कालः) कालायोगः, यथास्वलक्षणविपरीतलक्षणस्तु (कालः) कालमिथ्यायोगः। कालः पुनः परिणाम उच्यते ।। (च.सू. 11/42)

अर्थात् शीत, उष्ण और वर्षा के लक्षणों वाला हेमन्त , ग्रीष्म एवं वर्षा स्वरूप संवत्सर है, वह काल है। इसमें हेमन्त इत्यादि काल में अपने-अपने लक्षणों का अधिक मात्रा में होना काल का अतियोग है, इनमें अपने-अपने लक्षणों का कम मात्रा में होना काल का अयोग है और अपने-अपने काल के विपरीत लक्षणों का होना काल का मिथ्यायोग है, काल को ही परिणाम कहते हैं।

इन सब का विस्तार से वर्णन करने वाले आचार्यों ने रोगों की उत्पत्ति, विभिन्न उपक्रमों एवं पञ्चकर्म इत्यादि के प्रयोग अथवा शल्यक्रिया का प्रयोग इत्यादि में काल को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना है| स्वास्थ्यसंरक्षण का क्रम हो या चिकित्सा का क्रम हो या अन्य पर्यावरणीय अवस्था से सम्बन्धित स्थिति हो इन सब में काल को प्रमुखता से स्थान दिया गया है| आचार्य चरक ने अनेक स्थानों पर तिथि, नक्षत्र, करण को शुभस्वरूपक मुहूर्त के रूप में उल्लिखित किया है।

भारतवर्ष में काल की गणना का स्वरूप अत्यधिक प्राचीन है, इसके भिन्न-भिन्न स्वरूप प्राचीन काल से ही प्रचलित रहे हैं। सुश्रुतसंहिता में इसके सूक्ष्मतम विभाजन को प्रस्तुत किया गया है, यथा- अक्षिनिमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन ,संवत्सर एवं युग के रूप में प्रविभाग किया गया है, यह इस बात का द्योतक है कि काल की गणना का स्वरूप अत्यन्त प्राचीन है।

काल के निर्धारण के स्वरूप में यह विशेष रूप से ध्यान रखा गया है तथा मास, राशि एवं स्वरूप (लक्षण) इन तीनों के आधार पर ही ऋतु का निर्धारण किया गया है। इनमें उत्तरोत्तर बलवान् स्थिति मानी गयी है अर्थात् मास से राशि और राशि से लक्षणस्वरूपक विभाजन अधिक श्रेष्ठ, उपयुक्त एवं वैज्ञानिक आधार लिए हुए है। इस विभाजन में माघ एवं फाल्गुन को मास के आधार पर शिशिर बताया गया है, जबकि राशि के आधार पर मकर एवं कुंभ की राशि के आने पर ही शिशिर माना जाता है। यदि इस राशि का प्रवेश कभी किसी वर्ष में पौष-माघ में होता

है, तो वह शिशिर हो जाएगा और यदि माघ तथा फाल्गुन में राशि प्रवेश होगा, तो वह शिशिर होगा। इसलिए स्पष्ट कहा गया है कि मास से राशि बलवान् होती है। अतः जब राशि का प्रवेश हो तो उसी के आधार पर शिशिर इत्यादि ऋतु की गणना करना उपयुक्त रहता है।

इसी सन्दर्भ में यह भी विचारणीय है कि ऋतु के निर्देश का तीसरा हेतु स्वरूप (लक्षण) को माना गया है और यह सबसे बलवान् होता है, अतः इसी को प्राथमिकता दी जाती है अर्थात् जब शीत, उष्ण और वर्षा के लक्षण (स्वरूप) व्यवस्थित रूप से जिस काल में उपस्थित होते हैं, वही काल शिशिरादि ऋतुओं के रूप में गणना करने के योग्य है। अतः आचार्यों ने ऋतुओं के लिए जिन मासों को निश्चित किया है, कभी-कभी लक्षणों के देर से या जल्दी प्रकट होने पर उसी के आधार पर ऋतु मानना आवश्यक है, क्योंकि आयुर्वेद में ऋतुओं का प्रभाव स्वास्थ्य पर निश्चित रूप से पड़ता है, ऐसा माना जाता है।

उन शिशिरादि ऋतुओं के अनुसार ही व्यक्ति को अपनी दिनचर्या और ऋतुचर्या का परिपालन करना उपयुक्त रहता है। व्यवस्थाओं का परिपालन करते वाला व्यक्ति ऋतुपरिवर्तनजनित रोगों से ग्रस्त नहीं होता। यहाँ यह भी स्पष्ट जान लेना चाहिए कि जहाँ भारत के दक्षिणी प्रदेशों में वर्षा अधिक होती है, वहाँ आचार्यों ने एक प्रावृट् ऋतु की अधिक परिकल्पना की है तथा जहाँ उत्तरी भागों में शीत अधिक होता है, वहाँ शिशिर की परिकल्पना अधिक ऋतु के रूप में की गई है।

जहाँ प्रावृट् (ननु, प्रावृड्वर्षयोः को भेदः? उच्यते, प्रथमः प्रवृष्टः कालः प्रावृड्, तस्यानुबन्धो वर्षाः| सुश्रुत. सूत्र. ६/१० डल्हण) की गणना है, वहाँ शिशिर नहीं माना जाता और जहाँ शिशिर की परिकल्पना है, वहाँ प्रावृट् की गणना नहीं होती। अतः इन ऋतुओं के लक्षणों को निर्णायक रूप में देख कर ही उसके अनुसार चर्या करनी चाहिए। आयुर्वेद में तो लक्षणों और परिस्थितियों को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है, इसलिए ऋतुओं में (ऋतुओं के प्रभाव से अपने आप ही) दोष के प्रकोप और प्रशमन का भी निर्देश है।

भारतीय विशेषज्ञों ने काल के स्वरूप को दो प्रकार से, तीन प्रकार से, छः प्रकार से या १२ प्रकार से विभक्त किया है यहाँ यह स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिए कि आचार्य ने जो दो प्रकार अयनपरक विभाजन किया है उसमें यह उल्लेखनीय है कि अयन मार्ग को कहते हैं, जब सूर्य उत्तर मार्ग के अधिक निकट होता है तो इसे उत्तरायण काल कहते हैं और जब सूर्य दक्षिण मार्ग के अधिक निकट होता है तो इसे दक्षिणायन काल कहते हैं। भारतवर्ष में आयुर्वेद के आचार्यों के द्वारा सूर्य का यह मार्ग शिशिर इत्यादि ऋतुओं के विभाग के साथ ही सुनिश्चित किया गया

है, इसलिए ऋतुओं के लक्षण भी सुनिश्चित हैं। इतना अवश्य है कि जो स्थान सूर्य के जितना निकट जिस काल में होगा वहाँ पर उसी के अनुसार उतना ही लक्षणात्मक प्रभाव अधिक होगा, इसलिए आदान एवं विसर्ग काल में इन ऋतुओं को तीन-तीन के समूह में विभक्त किया है। इनमें भी उत्तम, मध्यम और अवर लक्षणों के अनुसार कल्पना की गयी है।

वर्तमान काल में भारतवर्ष में भी वैदेशिक कालगणना के स्वरूप कैलेण्डर को प्रमुखतापूर्वक स्वीकार किया जा रहा है | यद्यपि इसी के साथ भारतीय ज्योतिषशास्त्र की गणना के अनुसार की जाने वाली कालगणना भी पञ्चाङ्ग के रूप में प्रचलित है| पञ्चाङ्ग का यह स्वरूप भी अत्यन्त प्राचीन है, लेकिन सम्भवतः संहिताकाल में पञ्चाङ्ग का यह स्वरूप प्रचलन में नहीं था | पञ्चाङ्ग में तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण इन ५ अङ्गों को मान कर काल की गणना की जाती है, जो पूर्णरूपेण वैज्ञानिक मापदण्डों पर आज भी नियत स्वरूप में प्रमाणित की जाती है। यही कालगणना सर्वोत्कृष्ट है, स्थायी है और व्यवस्थित भी है। भारतवर्ष में इसी के आधार पर विभिन्न त्यौंहार माने जाते हैं तथा व्रत, उपवास एवं धार्मिक कार्य इसी के आधार पर किए जाते हैं।

वर्तमान काल में पाश्चात्य सभ्यता का अनुसरण करते हुए लोग इस ईसवीय वर्ष के प्रथम दिन को अत्यन्त ही धूमधाम से मनाने लगे हैं। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है, कि इसे उत्सव के रूप में मना कर प्रसन्नता प्राप्त करना तो उपयुक्त है, लेकिन उन पाश्चात्य देशों का अनुकरण करते हुए इस दिन मदिरापान कर उच्छृङ्खलता प्रदर्शित करना, अश्लीलता प्रदर्शित करना और अवांछित नृत्य इत्यादि के द्वारा अनुचित एवं भोंडा प्रदर्शन करना इस देश की संस्कृति के अनुकूल नहीं है। जो लोग इस दिन को उत्कृष्ट मान कर अपने उत्कृष्ट कार्य के लिए सम्पूर्ण वर्ष की परिकल्पना करते हैं तथा मंदिर में देवदर्शन या धार्मिक कार्यों को सम्पन्न करते हुए इस दिन को उत्सव के रूप में मनाते हैं तो वह तो उपयुक्त है तथा भारतीय संस्कृति के अनुकूल है, जिसमें किसी भी दिवस को शुभ बनाने के लिए धार्मिक कार्यों को सम्पन्न करने की श्रेणी में आता है। अतः इस दिन को भी धार्मिक उत्सव के रूप में मनाना भारतीयों के लिए उनकी संस्कृति के अनुकूल है, इसके विपरीत अनावश्यक उच्छृङ्खल कृत्य उपयुक्त नहीं हैं।

भारतवर्ष में विक्रम संवत् का भी प्रचलन है | विक्रम संवत् में चन्द्र मास एवं सौर वर्ष का उपयोग किया जाता है, विक्रम संवत् ईसा से ५७ वर्ष पूर्व अस्तित्व में आ चुका था | विक्रम संवत् का प्रारम्भ राजा विक्रमादित्य ने किया था, उनके दरबार में प्रसिद्ध खगोलशास्त्री वराहमिहिर अत्यन्त ही प्रतिष्ठित विद्वान् थे, इसके स्वरूप को व्यवस्थित करके प्रसारित करने में उनका सबसे बड़ा योगदान माना जाता है|

भारतवर्ष में कालगणना का एक स्वरूप शक संवत् के रूप में भी प्रचलित है, जिसे किसी शकराजा ने प्रारम्भ न करके कुषाण वंश के राजा कनिष्क ने प्रचारित किया था | कनिष्क कुषाणवंश का तृतीय शासक था | लगभग ईसा पूर्व १६५ में चीन में दो कबीलों में युद्ध हुआ था, जिसमें एक कबीले हिंगनू ने दूसरे कबीले यूची के प्रमुख को मार कर यूचियों को खदेड़ दिया था | ये यूची दो भागों में विभक्त हो गए, कनिष्ठ यूची तिब्बत की ओर चले गए और ज्येष्ठ यूची भारत की ओर आ गए | भारत की ओर आए हुए यूचियों में पहला शासक कुडुल कडफिसस था, इसका पौत्र कनिष्क हुआ | कनिष्क ने सन् ७८ में शकसंवत् को प्रारम्भ किया था | भारतीय पञ्चाङ्ग का प्रचलन जब भी हुआ, तो इसमें ५ तत्त्वों का इस गणना में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा, पञ्चाङ्ग में तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण ये ५ अङ्ग होते हैं।

इनके अतिरिक्त भी काल की गणना के अनेक प्रकार विश्व के भिन्न-भिन्न भागों में प्रचलित रहे हैं। सभी का एक समान उद्देश्य रहा है, कि काल के परिगणनपूर्वक इसके प्रत्येक क्षण का श्रेष्ठतापूर्वक उपयोग करते हुए व्यवस्थित जीवनयापन किया जाए।

कैलेण्डर हो या पञ्चाङ्ग उसका मुख्य उद्देश्य कालगणना और उसके अनुसार दिनचर्या, ऋतुचर्या, व्रत-त्यौंहार, सर्दी, गर्मी, बरसात का अनुमान एवं कृषिव्यवस्था या अन्य औद्योगिक व्यवस्थाओं में काल का सही आकलन कर उस के अनुरूप सम्पूर्ण व्यवस्थाएं करते हुए प्राणैषणा, धनैषणा एवं परलोकैषणापरक प्रक्रियाओं का समुचित रूप से परिपालन करते हुए इह लोक में प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को व्यवस्थित करने का प्रयत्न करता है|

ग्रेगोरियन कैलेण्डर या पञ्चाङ्ग के अनुरूप संवत्सर हो अथवा अन्य कोई सा भी संवत् हो, इन सभी में नववर्ष के प्रथम दिन एवं प्रथम मास अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण एवं उल्लास प्रदान करने वाले होते हैं। इस दिन प्रत्येक व्यक्ति यथासम्भव अपने आने वाले सम्पूर्ण वर्ष को सुखमय एवं हितस्वरूपक बनाने का संकल्प प्रकट करता है। अतः उल्लास एवं उत्साह से परिपूर्ण २०२३ के नववर्ष के आगमन के अवसर पर सभी के लिए मंगल कामनाएं। दुःख के अपवारण, कष्ट के निवारण, सुख के संचरण एवं सभी के लिए श्रेष्ठ उपलब्धियों के प्रापण का यह संवत्सर (वर्ष) सभी के लिए श्रेष्ठ हो, ख्रिस्तीय वत्सराभिनंदन के साथ-साथ सभी भारतवासियों का अभिनन्दन एवं अभिवन्दन।